



International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519

IJSR 2025; 11(4): 31-35

© 2025 IJSR

www.anantaajournal.com

Received: 13-05-2025

Accepted: 16-06-2025

डॉ. कल्पना कुमारी

सोसिएट प्रोफेसर, वनस्पति विज्ञान
विभाग, कालिंदी महाविद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

आयुर्वेद में अग्नि की अवधारणा एवं महत्व

कल्पना कुमारी

DOI: <https://www.doi.org/10.22271/23947519.2025.v11.i4a.2707>

सारांश

आयुर्वेद की अवधारणा त्रिदोष की अवधारणा पर आधारित है। ये त्रिदोष चयापचय के मूल सिद्धांत हैं, तदनुसार मनुष्यों को तीन प्रकारों में वर्गीकृत किया जाता है, अर्थात् वात-प्रकृति, पित्त-प्रकृति और कफ-प्रकृति। वात, पित्त और कफ में असंतुलन के कारण रोग होता है और जब संतुलित चयापचय बहाल हो जाता है तो यह ठीक हो जाता है। अतः तीनों दोषों के संतुलन को बनाए रखने के लिए चयापचय की अवधारणा का ज्ञान आवश्यक है।

आयुर्वेद के अनुसार, जीवन को बनाए रखने के लिए मुख्य कारक अग्नि है, और यह पाचन और चयापचय के लिए जिम्मेदार एक बहुत ही श्रेष्ठ इकाई है। अग्नि का उचित रखरखाव व्यक्ति को लंबी उम्र जीने में मदद करता है और इसकी गड़बड़ी कई तरह की बीमारियों को जन्म देती है। आचार्य चरक ने अग्नि के महत्व का उल्लेख किया है, जब किसी व्यक्ति की अग्नि सम होती है यानी संतुलन में होती है, तो व्यक्ति बिल्कुल स्वस्थ होता है और लंबा, स्वस्थ और खुशहाल जीवन जीता है लेकिन अगर अग्नि का कार्य बंद हो जाता है तो व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है।

कूटशब्द: त्रिदोष, वात, पित्त, कफ, जठराग्नि

प्रस्तावना

भारत की यह पवित्र भूमि ऋषि मनीषियों की भूमि रही है। उनकी कठोर तपस्या एवं अथाह परिश्रम से ही भारत विश्वगुरु की उपाधि प्राप्त कर पाया है। हमारे प्राचीन ऋषि मनीषी वर्तमान की भाँति विशाल महलों में न रहकर प्रकृति की गोद में स्थित आश्रमों में रहा करते थे। वे मानव जीवन के महत्व एवं मानव होने के उत्तरदायित्व से परिचित थे। अतः उन्होंने सर्वप्रथम स्वयं की दीर्घायु हेतु उपाय को खोजा। उन्होंने अपने आस-पास के क्षेत्रों में ही इसका समाधान सदाचार एवं औषधियों के रूप में प्राप्त किया। जहाँ सदाचार स्वास्थ्य को सुरक्षित रखता है वहीं औषधियों के माध्यम से अनेक रोगों का उपचार सम्भव है। धीरे धीरे उन्होंने स्वास्थ्यसम्मत अपने उपचारों को लिपिबद्ध करना प्रारम्भ किया। यह लिपिबद्ध परम्परा ही हमारे समक्ष आयुर्वेद शास्त्र के रूप में अवतरित हुई।¹

आयुर्वेद का जन्म, विस्तार एवं प्रचलन भारत की पवित्र भूमि पर ही हुआ है। जब विश्व के अन्य देश अथवा संस्कृतियाँ अशांति, बर्बरता, आक्रमण इत्यादि की कुत्सित नीतियों पर आधारित थी, उस समय तक भारतभूमि में शिल्प, कला, प्रौद्योगिकी, धर्म, दर्शन, विज्ञान, इत्यादि के मार्ग उन्नत हो चुके थे। भारतभूमि विद्याओं की उत्पत्ति एवं प्रचार-प्रसार से सर्वकल्याण के मार्ग की ओर अग्रसर थी।¹

वेद हमारे धर्मग्रन्थ हैं, एवं वे मानव की सभी समस्याओं का समाधान करने वाले ग्रन्थ हैं। इनकी उपादेयता को नकारा नहीं जा सकता है। आयुर्वेद भी पुण्यतम, शाश्वत और निःश्रेयसप्रद वेदाङ्ग हैं। अतः आयुर्वेद का वेदों के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है।

आयुर्वेद विद्वानों द्वारा सम्मानित पुण्यतम वेद है। आयुर्वेद तीनों लोकों के लिए हितकारी है। इसलिये आयुर्वेद को 'पुण्यतम वेद' की संज्ञा दी गई है। अन्य वेद केवल परलोक हितकर हैं—तस्यायुषो पुण्यतमो वेदो वेदविदां मतः। वक्ष्यते यन्मनुष्याणां लोकयोरुभयोर्हितम् ।।²

सुश्रुत, चरक और वाग्भट आदि आचार्यों ने आयुर्वेद को अथर्ववेद का उपवेद माना है। 'आयुषः पालनं वेदमुपवेदमथर्वणः' (अष्टाङ्गसंग्रह) काश्यप ने आयुर्वेद को पञ्चम वेद माना है, क्योंकि आयुर्वेद वेद पर ही आश्रित है। किसी भी वेद या वेदाङ्ग का अध्ययन करने वाला जब किसी रोग से ग्रस्त होता है, तो वह आयुर्वेद की शरण में जाता है। स्वस्थ पुरुष ही धार्मिक या लौकिक क्रियाओं का सम्पादन कर सकता है। इसलिए आयुर्वेद धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का मूल कारण है। आयुर्वेद नीरोगी जीवन देने वाला है।

Corresponding Author:

डॉ. कल्पना कुमारी

सोसिएट प्रोफेसर, वनस्पति विज्ञान
विभाग, कालिंदी महाविद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

जिस प्रकार दक्षिण हाथ में पाँच अंगुलियों में अंगूठा, उनका अधिपति प्रधान होता है उसी प्रकार त्रिऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद से भिन्न आयुर्वेद पंचम वेद है।¹²

ब्रह्मवैवर्तपुराण में भी आयुर्वेद को पञ्चम वेद कहा गया है। वेद शब्द का प्रयोग आयुर्वेद अर्थ में आयुर्वेद की संहिताओं में प्राप्त होता है— 'अथातो वेदोत्पत्तिमध्यायं व्याख्यास्यामः'।¹² आयुर्वेद आयु के विज्ञान का शास्त्र है। विज्ञान जगत् को पाञ्चभौतिक मानता है। इसके मौलिक सिद्धान्त, पञ्चमहाभूत, त्रिदोष, रस-गुण-वीर्य-विपाक आदि सभी का आधार विज्ञान है।¹²

सृष्टि के प्रारम्भ में जो नियम प्रयोग किए जाते थे। वे आज भी मान्य हैं, आयुर्वेद की चिकित्सा इन्हीं के आधार पर विश्व चिकित्सा पद्धति में अपना स्थान बनाए हुए है। आयुर्वेदरूपी सूर्य आकाशमण्डल में अपनी शाश्वत किरणों का लोककल्याणरूपी प्रकाश अनादिकाल से फैला रहा है। यह स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा करता है और रोगी व्यक्ति को व्याधिमुक्त ही नहीं करता बल्कि आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक इन त्रिविध दुःखों से हमेशा मुक्त होने का मार्ग दिखाने का कार्य करता है।

आयुर्वेद शब्द आयुस् और वेद इन दो शब्दों के मेल से बना है। जिसका अर्थ होता है आयु का ज्ञान, अतः आयु का ज्ञान जिसमें हो वह आयुर्वेद है। आचार्यों द्वारा दी गयी यथा हितायु, अहितायु, सुखायु और दुःखायु इन अर्थों को अभिव्यक्त करने वाली परिभाषाएँ हैं। अतः यह एक सर्वोच्च दर्शन है।¹² इन चारों का हिताहित एवं आयु का मान जहाँ कहा गया हो यह आयुर्वेद है।¹⁴

आयुर्वेद में हितायु, अहितायु, सुखायु और दुःखायु इन चारों आयुओं का वर्णन है। आयुर्वेद न केवल शरीर-रचना व औषध संरचना की जानकारी देता है, अपितु भोज्यों के सेवन, पथ्य सेवन अपध्यपरिहार, जड़ी बूटियाँ, रस, धातुरस इत्यादि के समानता पूर्वक प्रयोग के द्वारा अनेकों असाधारण और असाध्य रोगों के उपचार का ज्ञान भी प्रदान करता है। आयुर्वेद के दो उद्देश्य हैं।

1. स्वस्थ व्यक्तियों के स्वास्थ्य की रक्षा करना।
2. रोगी व्यक्तियों के रोग को दूर कर उन्हें स्वस्थ बनाना।

चार आयुओं का वर्णन

हितायु: जो सबका हित करने वाला हो, उसकी आयु हितायु कहलाती है, धन का लोभी न हो, सत्यवादी व शान्तप्रकृति का हो, प्रत्येक कार्य को सोच समझ कर करने वाला हो, सावधान रहने वाला, धर्म, अर्थ, और काम का बिना किसी विरोध के प्रयोग करता हो, पूज्य जनों की पूजा करता हो, ज्ञानवान् हो, शान्तिप्रधान हो, वृद्धजनों की सेवा करने वाला हो और समृद्धि शाली हो।

अहितायु: हितायु के गुणों से रहित अर्थात् विषमगुणों वाला अहितायु है।

सुखायु: उसकी आयु सुखायु कहलाती है, जो शारीरिक और मानसिक रोगों से रहित हो, यौवन सम्पन्न हो, बल-वीर्य-यश-पराक्रम युक्त हो, शास्वों का ज्ञाता और व्यवहारज्ञ हो, प्रसन्न और समृद्ध और विभिन्न प्रकार के उपभोगों से युक्त, जो प्रत्येक सफलता को प्राप्त करने वाला हो और अपनी इच्छानुसार विचार करने वाला हो।¹⁴

दुःखायु: सुखायु के विपरीत गुणों वाला दुःखायु है। आयु के स्वरूप और उसकी रक्षा का ज्ञान आयुर्वेद शास्त्र के द्वारा होता है। आहार-विहार और आचरण हितकर करने से आयु में स्थिरता आ जाती है, अन्यथा अज्ञानतावश असावधानी करने और स्वास्थ्य के नियमों का पालन न करने से आयु का ह्रास होता है अर्थात् आयु के रक्षणीय साधनों का उपदेश भी आयुर्वेद द्वारा ही होता है।¹⁴

त्रिदोष की अवधारणा: यद्यपि मानव शरीर पञ्चमहाभूतों से उत्पन्न हुआ है। किन्तु उसका परिचालन जल, अग्नि और वायु तीन

महाभूतों के द्वारा होता है। इस समस्त संसार में तीनों पञ्चमहाभूत सूर्य चन्द्र और वायु के रूप में प्राकृतिक और शरीरिक रूप में इनका प्रतिनिधित्व वात (वायु) पित्त (सूर्य) और कफ (जल) शरीरिक क्रियाओं का संचालन करते हैं। इन तीनों का कार्य शरीर में इस प्रकार का है वायु का कार्य विशेष अर्थात् शारीरिक गतियों का संचालन और नियन्त्रण करना है, पित्त का कार्य आदान अर्थात् आग्नेय गुणों के कारण पाचनकर्म और उसका शोषण करना है और कफ का कार्य विसर्ग अर्थात् जलीय गुणों के कारण शरीर में एक का संचार करना है या पोषण करना है।¹²

'दूषयन्ति मनः शरीरं च इति दोषाः' अर्थात् मन और शरीर को दूषित करने के गुण के कारण, इन्हें दोष कहा जाता है। दूधनात् दोषाः आरणात् धातवः अर्थात् वात, पित्त और कफ जब दूषित होकर, रोग उत्पन्न करते हैं ते दोष कहलाते हैं तथा जब वे साम्यवस्था में रहते हैं, शरीर को संतुलित करते हैं। चिकित्साशास्त्रीय शब्दावली में इसे विन्दोष अर्थात् वात, पित्त और कफ संयुक्त होकर रोगावस्था में त्रिदोष कहलाते हैं। वातादि दोष विषमावस्था में रोग को उत्पन्न करते हैं और साम्यवस्था में स्वास्थ्यवर्धक होते हैं। अस्वस्थ शरीर को स्वस्थ करने के लिए तीनों दोषों को साम्यावस्था में लाना आवश्यक है। यही आयुर्वेदीय चिकित्सा का मूल है। वाग्भट्ट के अनुसार तीनों दोषों की संतुलन की स्थिति स्वास्थ्य की स्थिति को दर्शाती है और रोग इस संतुलन से विचलन है। त्रिदोष वात, पित्त और कफ स्थिर नहीं होते हैं और बदलते वातावरण के साथ बदलते रहते हैं। व्यक्ति की इन्द्रियाँ, मन और आत्मा भी शुद्ध होनी चाहिए। यदि किसी व्यक्ति का मानसिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्य अच्छी तरह से संतुलित है और वह उचित भोजन (हितभोजन) लेता है और आत्म नियंत्रण का अभ्यास करता है तो वह कई वर्षों तक जीवित रह सकता है।¹²

1) वात

वात मानव शरीर का मूल तत्व है, जो शरीर के सभी अङ्ग और उपाङ्गादि को गति देता है और उनका नियन्त्रण करता है। वात में आकाश और वायु दो महाभूतों की प्रधानता होती है। वात इन महाभूतीय गुण के कारण शरीर पर हावी रहता है और पित्त और कफ पर भी नियन्त्रण रखता है। शरीर में वात का आश्रय स्थल नाभि के नीचे का भाग, छोटी और बड़ी आँतें, कमर, जंघा और हड्डियाँ आदि हैं। इसके सकारात्मक गुणों में कल्पना शीलता, संवदेन, लचीलापन और उल्लासित रहना होता है। वात के आसामान्य होने पर वजन कम होना, शक्ति का हास, चिन्ता, क्रोध इत्यादि उत्पन्न होने लगता है। गठिया, कब्ज, हृदय रोग, मानसिक विकार, उच्च रक्तचाप इत्यादि रोग वात के अनियमित होने के कारण होते हैं।¹²

वात पाँच प्रकारक माना गया है —

'प्राण': प्राण वायु सिर, ग्रीवा तथा वक्ष स्थल में स्थित रहता है। यह मस्तिष्क के सभी कार्यों को नियन्त्रित रखता है। प्राण वायु श्वसन क्रिया को भी नियन्त्रित करती है।¹²

'उदान': उदानवायु की स्थिति वक्षस्थल और गर्दन में मानी जाती है। यह वाणी को नियन्त्रित करती है।¹²

'व्यान': व्यान वायु सम्पूर्ण शरीर में वास करती है और शरीर के संचार और गतियों पर नियन्त्रण रखती है।¹²

'समान': समानवायु का आश्रय स्थल छोटी और बड़ी आँत में है। समान वायु भोजन के पाचन तथा मल दूषणों के पृथकीकरण को संचालित करती है। यह शरीर के ताप, द्रव्य पदार्थ, पित्त और कफ के कार्यों का भी नियन्त्रण करती है।¹²

‘अपानवायु’: अपान वायु मूत्राशय में स्थित है। मल, मूत्र और वीर्य आदि का निष्कासन अपान वायु के द्वारा होता है। यह वायु स्त्रियों के मासिक धर्म का भी नियन्त्रण करती है।¹²

वात प्रधान व्यक्ति शरीर से कमजोर, हल्का और पतले शरीर वाला होता है, उसकी त्वचा रुख, बाल रुखे, आँखें शुष्क, स्वभाव में चंचलता, मानसिक रूप से कमजोर होते हैं। इन्हें सामान्य श्वास, गला बैठना, आँख, कान, नाक, मानसिक विकार इत्यादि की सम्भावना रहती है। वात हमारे शरीर में संकोचन, प्रसारण, उत्कर्षण, अन्तर्नयन, बहिर्नयन, श्वास-उच्छ्वास, गमन आदि कामों का निष्पादन करता है। रक्तसंचार, मल-मूत्रादि विसर्जन, पाचन, रसप्राव, हृदय स्पन्दन आदि कार्य भी वात के द्वारा ही होते हैं।¹²

2) पित्त

पित्त प्रधान व्यक्ति शारीरिक रूप से मध्यम, गर्म शरीर वाला पसीना अधिक आने वाला, आँखें लालिमायुक्त होना, अंगों का रंग काला होना, सामान्य से कम बाल होना, शरीर कोमल, झाड़ियों युक्त होना इत्यादि गुणों से युक्त होता है। सामान्यतः इन्हें मुख का कड़वापन, पीलिया, मानसिक रोग, चर्मरोग, नेत्र विकार और गर्मी के रोग इत्यादि रोग हो जाते हैं। पित्त मानव शरीर को ऊष्मा देता है। यह शरीर को रंगत प्रदान करता है। पित्त, पाचन कर्म, पोषण और संवर्धन का कार्य करता है।¹²

3) कफ

कफ मानव शरीर का जलीय अंश है। कफ में जल और पृथ्वी महाभूत के गुणों की प्रधानता होती है। कफ शरीर में जलीय अशीय गुण के कारण द्रव्य पदार्थों को धारण करते हुए शरीर की रक्षा करता है और शारीरिक प्रतिरक्षा गुण का भी संवर्धन करता है। मानव शरीर में कफ का आश्रयस्थल कण्ठ के ऊपर का भाग, कण्ठ, सिर, गर्दन, वक्षस्थल, हड्डियों का जोड़, उदर का ऊपरीभाग एवं शरीर की मेद धातु है। कफ के असामान्य होने से उष्णता में कमी, अजीर्णता, मधुमेह, जरोदर और आमवात आदि अनेक प्रकार के रोगों के होने की सम्भावना रहती है। इसके प्रकृति के कारण मानव में शान्ति, सहानुभूति, साहसीपन, क्षमावानता और स्नेह गुणों का वास होता है।¹²

आयुर्वेद में कफ पाँच प्रकार का होता है ‘तर्पक कफ’ की स्थिति शरीर में सिर होता है। यह कफ मानव शरीर के मस्तिष्क तथा ज्ञानेन्द्रियों को उनके कार्य निष्पादन में सहायता प्रदान करता है। ‘बोधक कफ’ मानव शरीर के जीभऔर आहारनाल अङ्ग में व्यवस्थित होता है। यह स्वाद अर्थात् भोजन में स्वाद का अनुग्रह करता है। ‘अवलम्बक कफ’ मानव शरीर के हृदय और त्रिक में अवस्थित होकर अपना कार्य निष्पादित करता है। यह हृदय के सुचारु रूप से चलने में सहायक होता है। ‘क्लेदक कफ’ शरीर के अमाशय में रहता है। जब भोजन करते हैं, भोजन छोटे-छोटे कणों में बँट जाता है, तब ‘क्लेदक कफ’ भोजन को आद्रता अर्थात् नमी या द्रव्यता देता है। ‘श्लेष्मक कफ’ मानव शरीर के हड्डियों के समस्त जोड़ों में विद्यमान रहता है। यह शरीर में हड्डियों को सुदृढ़ता और शक्ति प्रदान करता है।¹²

कफ प्रधान व्यक्ति सुन्दर, शारीरिक रूप से बलवान्, सुन्दर बालों वाले, बड़े और सुन्दर नेत्र वाले, धीरे-धीरे भोजन करने वाले, निद्रालु स्वभाव वाले इत्यादि होते हैं। कफ प्रधान व्यक्ति को आलस, मोटापा, स्मरण शक्ति का विनाश, जोड़ों का दर्द इत्यादि रोग हो सकते हैं। वर्षा ऋतु और शीत ऋतु इनके प्रतिकूल होती है। इन्हें मोटापा जल्दी ग्रसित कर लेता है। इस प्रकार यह स्वतः सिद्ध हो जाता है कि वात, पित्त और कफ एक दूसरे के पूरक हैं और मिलकर ही कार्य करते हैं। इनकी साम्यावस्था का नाम ही स्वास्थ्य है।¹²

अग्नि की अवधारणा

आयुर्वेद ने हमारे शरीर में पाचन और चयापचय के एक महत्वपूर्ण कारक अग्नि का वर्णन किया है। अग्नि का कार्य जीवन के

रखरखाव के लिए, ग्रहण किए गए भोजन को पचाना, अवशोषित करना और आत्मसात करना है।

आधुनिक चिकित्सा के अनुसार, हमारे शरीर की सभी कोशिकाओं (धातु परमाणुओं) में जन्म से लेकर मृत्यु तक चयापचय प्रक्रिया, विभाजन और गुणन चलता रहता है। कोशिका शरीर की कार्यात्मक इकाई है। चरक के अनुसार, शरीर के घटक भागों को यदि आगे परमाणुओं में विभाजित किया जाए, तो वे असंख्य हो जाएंगे, क्योंकि ऐसी कोशिकाएं या परमाणु अत्यधिक संख्या में, बहुत सूक्ष्म और अति संवेदनशील होते हैं। कोशिकाओं के संयोग और वियोग में, सक्रिय कारक वात और क्रिया की प्रकृति हैं। हमारे शरीर के जीवित रहने के लिए कोशिकाओं में निरंतर जैविक प्रक्रिया चलती रहती है जिसके लिए जैविक ऊर्जा की आवश्यकता होती है। आयुर्वेद में अग्नि द्वारा यही जैविक ऊर्जा प्रदान की जाती है। यह जैविक ऊर्जा दो प्रकार की होती है: संभावित और गतिज।

मानव शरीर पञ्चमहाभूत, सप्त धातु इत्यादि शरीरोत्पत्ति कारणों से तेरह प्रकार की अग्नियों को धारण करता है। इन सभी अग्नियों का कार्य शरीर को स्वस्थ रखना है। इन सभी का सञ्चालन अथवा नियन्त्रण सबसे प्रमुख अग्नि जठराग्नि या पाचक अग्नि के हाथों में होता है। मानव शरीर में विद्यमान तेरह अग्नियाँ इस प्रकार हैं— एक जठराग्नि, पाँच भूताग्नियाँ और सात धात्वग्नियाँ।¹² कार्य और क्रिया स्थल के अनुसार अग्नि को 13 प्रकारों में विभाजित किया गया है—ये हैं

1. जठराग्नि — पेट और ग्रहणी में मौजूद एक अग्नि।
2. भूताग्नि — पाँच मूल तत्वों से पाँच अग्नि।
3. धातुग्नि — सात अग्नि, प्रत्येक सात धातुओं में एक।

1. जठराग्नि

जठराग्नि शरीर में विद्यमान महत्वपूर्ण अग्नि है। सामान्य रूप में इसे पाचक अग्नि या कायाग्नि भी कहा जा सकता है। इसका आश्रय स्थल मानव शरीर का अमाशय, छोटी आँत और बड़ी आँत के मध्य नाभि प्रदेश माना जाता है। जठराग्नि अपनी यथाशक्ति के अनुसार मनुष्य के द्वारा खाये गए भोजन का पाचन करती है। मानव शरीर की स्थिति के अनुसार भोजन को खण्डित करके उसकी शक्ति से भोजन को तरल पदार्थों में परिवर्तित करके शरीर का पोषण करती है। यह शरीर के आयु, वर्ण, स्वर, शक्ति, उत्साह, शारीरिक तापमान का नियन्त्रण रखती है और अन्य सभी 12 अग्नियों को क्रियाशील बनाये रखने का प्रयत्न करती है या सहायता करती है। इन सभी कार्यों के करने के लिए जठराग्नि की साम्यावस्था उत्तरदायी होती है। अगर शरीर में यह अवस्था न हो, तो शरीर रोग से ग्रसित हो जाता है। अष्टांग हृदय के अनुसार, जठराग्नि, ग्रहणी (ग्रहणी) का स्थान है, जिसका कारण यह है कि यह भोजन को एक निश्चित समय तक अमाशय (पेट) के अंदर रखती है ताकि वह पाचन क्रिया के साथ काम कर सके। प्रत्येक व्यक्ति जब पोषक तत्व ग्रहण करता है, सबसे पहले जठराग्नि में आता है और जठराग्नि की क्रिया होती है। यह पाँच मूल तत्वों से बने खाद्य पदार्थों को पचाती है और उन्हें संबंधित धातुओं के परमाणुओं (ऊतकों) द्वारा उपयोग के लिए परिवर्तित करती है। यह हमारे शरीर में खाद्य पदार्थों को सार भाग (प्रसाद) और अपशिष्ट उत्पादों में अलग करने के लिए भी जिम्मेदार है। जठराग्नि को मनुष्य में पाचन के अपने प्रदर्शन के अनुसार चार श्रेणियों में भी वर्गीकृत किया गया है, अर्थात् विषमाग्नि, तीक्ष्णाग्नि, मंदाग्नि और समाग्नि।^{2, 4, 5, 6, 7, 9}

समाग्नि: समाग्नि इस बात पर निर्भर करती है कि दोष (वात, पित्त, कफ) सामान्य अवस्था में हैं या नहीं। समाग्नि विशेष रूप से अग्नि की आदर्श अवस्था को इंगित करती है, जहाँ यह इष्टतम रूप से और संतुलन में कार्य कर रही होती है। एक मजबूत और संतुलित अग्नि कुशल चयापचय, मजबूत प्रतिरक्षा और समग्र कल्याण में योगदान देती है।^{2, 5}

विषमाग्नि

विषम अग्नि कभी अत्यधिक तेज होकर भोजन का पाचन शीघ्र, कभी अत्यधिक मन्द होकर भोजन का पाचन बहुत धीरे और कभी समान होकर भोजन का पाचन सामान्य रूप में ठीक ढंग से पचाती हैं। जिसके कारण मानव शरीर में पेट में तेज दर्द, भारीपन, अतिसार कब्ज और जलोदरादि जैसे रोगादि उत्पन्न हो जाते हैं। यह अवस्था वात दोष को वृद्धि के कारण होती है।^{2,5}

मंदाग्नि

इस अवस्था में जठराग्नि अत्यधिक मन्द गति वाली हो जाती है। जिस कारण अल्प मात्रा में खाये गये भोजन का भी पाचन ठीक प्रकार से नहीं हो पाता है। इस कारण शरीर के पेट और सिर, अङ्गों में प्रकिया कायाधित होना उल्टी, शरीर में विकारादि उत्पन्न हो जाते हैं। अग्नि की अवस्था कफ दोष के कारण होती है।^{2,5}

तीक्ष्णाग्नि

नाम के अनुसार ही यह जठराग्नि अत्यधिक तीव्र होता है, जिसके कारण अधिक मात्रा में खाये गये भोजन भी बहुत जल्दी पच जाता है, जिससे मनुष्य अधिक खाने लगता है और इसका विपरीत परिणाम होता है। इस अवस्था में शरीर में गले, ओठ और तालु में सूखापन होने लगता है। मनुष्य को अत्यधिक गर्मी भी लगने लगती है। इस अग्नि को भस्म भी कहा जाता है, क्योंकि यह सबकुछ भस्म कर देती है।^{2,5,6}

2. भूताग्नि

संस्कृत में “भूत” शब्द पाँच तत्वों को संदर्भित करता है — पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश — जिनके बारे में माना जाता है कि वे मानव शरीर सहित ब्रह्मांड में सब कुछ बनाते हैं। “अग्नि” का अर्थ है आग। आयुर्वेद में, यह माना जाता है कि प्रत्येक तत्व के लिए एक अग्नि होती है, और भूताग्नि विशेष रूप से अग्नि तत्व से संबंधित अग्नि को संदर्भित करती है। भूताग्नि को पाँच प्रकार की अग्नि में विभाजित किया जाता है जो इन पंचमहाभूतों का अनुसरण करती हैं। वे पार्थिवग्नि, आप्यग्नि, अग्नियग्नि, वायव्यग्नि, नभसाग्नि हैं। वे खाद्य पदार्थों में मौजूद घटकों के अपने हिस्से को पचाते हैं। ये पञ्चभूताग्नियाँ जठराग्नि के द्वारा किये गए पाचित खाने का अपने महाभूत के अनुरूप रस में परिवर्तन करती हैं और उनका पाचन करती हैं। यह भूताग्नि का समूह मानव शरीर के यकृत अंश में विद्यमान रहता है और भोजन को पाँच अङ्गों में विभक्त करके अपने-अपने महाभूत से संयोग करके शरीर का पूर्णता पोषण और सम्वर्द्धन प्रदान करती है। इस तरह भोजन को अदभुत ऊर्जा में बदलने के लिए, हम में से हर एक को एक विशेष पंचमहाभूत अग्नि की आवश्यकता होती है जो हमारे शरीर में सबसे कम जटिल संरचना में सभी घटकों को संसाधित कर सकती है ताकि हमें ऊर्जा और शक्ति मिल सके।^{2,4,5,6,7,9}

3. धातु अग्नि

धात्वाग्नि चयापचय अग्नि को संदर्भित करती है जो सात शारीरिक ऊतकों के परिवर्तन और आत्मसात के लिए जिम्मेदार है, जिन्हें धातु के रूप में जाना जाता है। आयुर्वेदिक सिद्धांतों के अनुसार, मानव शरीर सात धातुओं से बना है, जो रस (प्लाज्मा), रक्त (रक्त), मांस (मांसपेशी), मेद (वसा), अस्थि (हड्डी), मज्जा (मज्जा), और शुक्र (प्रजनन ऊतक) हैं। धातु अग्नि प्रत्येक धातु स्तर पर होने वाली विशिष्ट पाचन और चयापचय प्रक्रियाओं का प्रतिनिधित्व करती है। यह खाए गए भोजन को तोड़ने और संबंधित धातुओं को पोषण देने और फिर से भरने के लिए आवश्यक पोषक तत्वों को निकालने के लिए जिम्मेदार है। प्रत्येक धातुग्नि एक विशिष्ट ऊतक से मेल खाती है और इसके निर्माण, रखरखाव और अपशिष्ट उत्पादों के उन्मूलन को नियंत्रित करती है। उदाहरण के लिए, रस धातुग्नि प्लाज्मा पर कार्य करती है और प्लाज्मा ऊतक के निर्माण

और पोषण को नियंत्रित करती है। इसी तरह, रक्त ऊतक के परिवर्तन और रखरखाव को रक्त धातुग्नि नियंत्रित करती है। धातुग्नि की शक्ति और संतुलन समग्र स्वास्थ्य और तंदुरुस्ती के लिए महत्वपूर्ण है। जब धातुग्नि इष्टतम रूप से कार्य कर रही होती है, तो यह धातुओं के उचित विकास और कामकाज को सुनिश्चित करती है। धातुग्नि में असंतुलन या हानि, पोषण संबंधी कमियों, ऊतक विकृति और शरीर में विषाक्त पदार्थों के संचय सहित विभिन्न स्वास्थ्य समस्याओं को जन्म दे सकती है।^{2,4,5,6,7,9}

अग्नि का महत्व

शरीर में दोष धातु संतुलन में अग्नि की सबसे महत्वपूर्ण भूमिका है। अग्नि का महत्व जैसा कि कई संहिताओं में बताया गया है कि अग्नि स्वास्थ्य को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। वेदों में अग्नि को प्रकाश, गर्मी, भोजन पकाने की क्षमता के लिए अग्नि कहा गया है। लेकिन आयुर्वेद में अग्नि को दूसरे स्तर पर लिया जाता है, यानी इसमें पंचमहाभूत होते हैं जो शरीर के तत्वों का निर्माण करते हैं, ये तत्व शरीर के कोशिकीय और ऊतक स्तर के गठन का आधार हैं। अगर यह ठीक से काम नहीं कर रहा है तो असंतुलन कई बीमारियों का कारण बन सकता है।^{4,5}

विभिन्न प्रकार के आहार पदार्थों का पाचन उनकी अपनी भूताग्नि द्वारा होता है, अंतराग्नि (जठराग्नि) द्वारा प्रोत्साहित और संवर्धित किया जाता है, जिसे आगे धातुग्नि द्वारा पचाया और चयापचयित किया जाता है, जिससे शरीर को पोषण शक्ति, रंग और सुखी जीवन के साथ जोड़ा जाता है और साथ ही सात धातुओं को ऊर्जा प्रदान की जाती है।⁵

बल, वर्ण, स्वास्थ्य, उत्साह, उपचय (शरीर का विकास), प्रभा, ओजस, तेजस और यहां तक कि आयु— सभी अग्नि और उसके कार्य पर निर्भर करते हैं। जब तक अग्नि संतुलन की अवस्था में है, तब तक मनुष्य स्वस्थ और लंबा जीवन जी सकता है, अग्नि की हानि से जीवन की हानि होती है।

धातुओं के पदार्थों (अमा) के संचय को रोकती है, और पोषक तत्वों के आत्मसात को बढ़ावा देती है। अग्नि का उचित कार्य यकृत, गुर्दे और अन्य अंगों की विषहरण प्रक्रियाओं का समर्थन करता है, जिससे समग्र स्वास्थ्य को बढ़ावा मिलता है। जब अग्नि कमजोर या असंतुलित होती है, तो यह कुपोषण और पोषक तत्वों की कमी का कारण बन सकती है, भले ही आहार पौष्टिक हो। इसके परिणामस्वरूप कई स्वास्थ्य समस्याएं हो सकती हैं, जैसे कि कमजोरी, थकान और कमजोर प्रतिरक्षा प्रणाली। अधिकांश बीमारियाँ अग्नि की खराबी का परिणाम हैं, जिसे सही मायने में स्वास्थ्य का मूल आधार कहा गया है। अग्नि न केवल स्थूल और सूक्ष्म पोषक तत्वों के अवशोषण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, बल्कि रोगजनकों के लिए भी विनाशकारी है। जो भोजन ठीक से पचता नहीं है उसे आयुर्वेद में “अमा” कहा जाता है और यह बीमारियों के लिए जिम्मेदार एक विष या रोगजनक के अलावा और कुछ नहीं है। पाचन अग्नि का उचित कार्य पाचन तंत्र, संचार तंत्र, रोगों के प्रति मजबूत प्रतिरक्षा या प्रतिरोध, उचित ऊतक विकास और शरीर के रंग रूप के सामान्य स्वर से स्पष्ट होता है। यह शरीर में बुद्धि, पोषण और जागरूकता का स्रोत भी है। यह पाचन, पुनः अवशोषण, संवेदनाओं और ऊर्जा के निर्माण से शरीर की कई शारीरिक प्रक्रियाओं का समन्वय करता है। यह मनुष्य के शरीर और मन दोनों को प्रभावित करता है।^{4,5,6,7,8}

मंद जठराग्नि से होने वाले रोग

- शरीर में पाचक अग्नि अगर मंद या धीमी है तो इसकी वजह से भी कई समस्याएं होने लगती हैं इनमें से कुछ प्रमुख निम्न हैं:
- पेट और सिर में भारीपन
- खांसी
- सांसों से जुड़े रोग

- मुंह से लार बहना
- उल्टी आना
- शरीर में कमजोरी

तीव्र जठराग्नि से होने वाले रोग

कुछ लोगों के शरीर में जठराग्नि काफी तीव्र होती है जठराग्नि के अधिक तीव्र होनेकी वजह से भी कई तरह की समस्याएं होने लगती हैं इनमें से प्रमुख निम्न है

- गले, होंठों और तालु में सूखापन
- शरीर में गर्मी महसूस होना
- ज्यादा भूख लगना

वनस्पतियों का रोगों के उपचार में उपयोग

यदि अग्नि की चयापचय क्रिया को बनाए रखा जाए तो बीमारी से बचा जा सकता है। आयुर्वेद में औषधीय पौधों का बहुत महत्व है और वे विभिन्न रोगों को ठीक करने में सहायक होते हैं। कुछ औषधीय पौधे जो चयापचय संबंधी विकारों को सुधारने में सहायक होते हैं, वे हैं चित्रक (*Plumbago zeylanica*) और पिप्पली (*Piper longum*), जीरा (*Cuminum cyminum*), धान्यक (*Coriandrum sativum*), शतपुष्पा (*Foeniculum vulgare*) आदि। हरीतकी (*Terminalia chebula*), अमलकी (*Embllica officinalis*), गुग्गुल (*Commiphora mukul*), अमृता (*Tinospora cordifolia*), निम्बा (*Azadirachta indica*) आदि चयापचय संबंधी विकारों के उपचार के लिए आमतौर पर उपयोग किए जाने वाले पौधों का एक और समूह है।³

निष्कर्ष

आयुर्वेदानुसार कोई जीव या प्राणी या मनुष्य तभी स्वस्थ रह सकता है, जब वह शारीरिक रूप से, समाग्नि युक्त, त्रिदोष की समानावस्था से युक्त, समान धातु, मल और कर्म से प्रसन्नचित्त, मन एवं इन्द्रियों से युक्त हो। इसलिए मनुष्य को अलग-अलग समयानुसार, अलग स्थिति के अनुरूप अपने जीवन के किया कलापों को करना चाहिए। स्वास्थ्य की अवधारणा में शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्य शामिल हैं। नैतिक और सामाजिक जीवन के नियमन के लिए स्वस्थवृत्त (व्यक्तिगत स्वच्छता) और सद्वृत्त (आचार संहिता) दोनों आवश्यक हैं।

जब अग्नि सामान्य स्थिति में होती है तो यह जीवन का समर्थन करती है। जब यह अग्नि रुग्ण या दूषित हो जाती है तो यह कई बीमारियों का कारण बन जाती है। इसलिए अग्नि को समझना रोग प्रक्रिया को समझने के साथ-साथ उपचार के निर्धारित सिद्धांतों के लिए महत्वपूर्ण अवधारणाओं में से एक है। यदि शरीर में अग्नि ना हो तो भोजन पचेगा नहीं और शरीर में धातुएं भी नहीं बनेंगी।

सन्दर्भ सूची

- 1^प मोनिका एवं दीपमाला गहलोत संस्कृत साहित्य में आयुर्वेद 2018य राजस्थानी ग्रन्थागार ए सोजती गेट ए जोधपुर राजस्थान ए पृष्ठ संख्या 117 .133^प
- 2^प राणा सुषमा ए कुमार आशुतोष एवं सुनीता ए आयुर्वेद.परिचय एवं आधारभूत सिद्धान्त 2017य विद्यानिधि प्रकाशन ए खजूरी खास ए दिल्ली ए पृष्ठ संख्या ए 90.99^प
3. Sharma PS. Realms of Ayurveda. New Delhi: Arnold Heinemann Publishers; 1979. p. 195-199.
4. Thakur A, et al. Concept and significance of Agni in Ayurveda. Int J Ayurveda Pharma Res. 2018;6(9):76-80.
5. Pawar CB, Divekar U. Ayurvedic review of Agni. Int J Herbal Med. 2023;11(5):184-186.
6. Monika, et al. Conceptual review on Agni in Ayurveda. World J Pharm Med Res. 2023;9(8):51-54.

7. Chauhan B. Importance of Agni and its role in Chikitsa. J Ayurveda Integr Med Sci. 2022;3:167-171.
8. Agrawal A, et al. Physiological aspects of Agni. J Ayu. 2010;31(3):395-398.
9. Katwal S, et al. A critical review on concept of Agni in Ayurveda and its clinical significance. Int J Res AYUSH Pharm Sci. 2017;1(1):73-76.